Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2025 6(1), 122–125

GLOBALIZATION AND COMMERCIALIZATION IN CONTEMPORARY HINDI POETRY

समकालीन हिंदी कविता में वैश्वीकरण और व्यवसायीकरण

Reena Ranga [1]

DOI
10.29121/shodhkosh.v6.i1.2025.5657

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2025 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: This paper analyses the impact of globalization and commercialization on contemporary Hindi poetry. The spread of global culture and the influence of market-based ideologies have led to both change and resistance in Hindi poetic expression. Some poets critically interpret themes such as consumerism, cultural erosion and capitalist exploitation, while other poets express the dilemmas of identity and intimacy in a globalized world. This study analyses the content, language and craft of selected poems of contemporary Hindi to understand how poets communicate at the juncture of local and global contexts. Poems by Manglesh Dabral, Rajesh Joshi and Anamika provide key insights into the changing poetic landscape in this era of globalization.

Hindi: यह शोध पत्र समकालीन हिंदी कविता पर वैश्वीकरण और व्यावसायिकता के प्रभाव का विश्लेषण करता है। वैश्विक संस्कृति के प्रसार और बाजार आधारित विचारधाराओं के प्रभाव ने हिंदी काव्य-प्रकटीकरण में परिवर्तन और प्रतिरोधकृदोनों को जन्म दिया है। कुछ कवि उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक क्षरण और पूंजीवादी शोषण जैसे विषयों की आलोचनात्मक व्याख्या करते हैं, जबकि अन्य कवि वैश्वीकृत संसार में पहचान और आत्मीयता की दुविधाओं को अभिव्यक्त करते हैं। यह अध्ययन समकालीन हिंदी की चयनित कविताओं की विषयवस्तु, भाषा और शिल्प का विश्लेषण करता है, ताकि यह समझा जा सके कि कवि स्थानीय और वैश्विक संदर्भों के संगम पर कैसे संवाद करते हैं। मंगलेश डबराल, राजेश जोशी और अनामिका की कविताएँ इस वैश्वीकरण के दौर में बदलते काव्य परिदृश्य की प्रमुख अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करती हैं।

Keywords: Globalization, Hindi Poetry, Commercialism, Cultural Identity, Consumerism, Urban Displacement, Feminism वैश्वीकरण, हिंदी कविता, व्यावसायिकता, सांस्कृतिक पहचान, उपभोक्तावाद, शहरी विस्थापन, नारीवाद

1. प्रस्तावना

वैश्वीकरण के युग ने भाषाओं, संस्कृतियों, अर्थव्यवस्थाओं और साहित्यिक परंपराओं में व्यापक परिवर्तन लाए हैं। हिंदी कविता, जो परंपरागत रूप से सामाजिक यथार्थवाद, रोमांटिकता और आध्यात्मिक खोज में रची-बसी रही है, अब उदारीकरण, उपभोक्तावाद और वैश्विक बाजार से उत्पन्न नई चिंताओं को प्रतिबिंबित करने लगी है। यह शोध पत्र विश्लेषण करता है कि समकालीन हिंदी कवि इन शक्तियों का किस प्रकार सामना करते हैं और कविता को प्रतिरोध, चिंतन तथा सांस्कृतिक पहचान की पुनःपरिभाषा के एक माध्यम के रूप में कैसे प्रयोग करते हैं।

- **वैश्वीकरण और सांस्कृतिक चिंता**

''वे हमारे घरों तक आए
और हमारे चूल्हों की आग से अपने बाजारों को गर्म किया''

मंगलेश डबराल का यह मार्मिक दोहा पारंपरिक भारतीय जीवन में वैश्वीकरण द्वारा लाई गई गहरी व्याकुलता को प्रभावशाली रूप से व्यक्त करता है। बाहरी लोगों के घरों में प्रवेश करने और "चूल्हों की आग" से अपने बाजारों को गर्म करने की छवि एक रूपक के रूप में यह दर्शाती है कि वैश्विक आर्थिक व्यवस्थाएं किस प्रकार घरेलू और सांस्कृतिक अंतरंगता की सीमाओं में घुसपैठ करती हैं और उनका शोषण करती हैं। "चूल्हों की आग" पारंपरिकता, ऊष्मा, जीवन-निर्वाह और पारिवारिक आत्मीयता का प्रतीक है कृ किंतु डबराल की कविता में यह आग अब बाहरी, निर्जीव बाजारों को ऊर्जा प्रदान करने के लिए उपयोग की जा रही है।

यह परिवर्तन एक सांस्कृतिक उपनिवेशवाद को दर्शाता है, जहाँ वैश्वीकरण केवल स्थानीय जीवनशैली को प्रभावित ही नहीं करता, बल्कि उसे अधिग्रहित कर उसकी मौलिकता और स्वायत्तता को क्षीण कर देता है। डबराल की कविता एक सांस्कृतिक चिंता को प्रकट करती है - यह भय कि जो

कुछ स्वाभाविक, व्यक्तिगत और स्वदेशी है, उसे वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्थाएं वस्तु में परिवर्तित कर रही हैं और उपभोग की वस्तु बना रही हैं। उनकी काव्य-ध्वनि आधुनिक प्रगति के नाम पर पहचान और मूल्यों के मिटाए जाने के विरुद्ध एक सशक्त आलोचना के रूप में उभरती ळें

"मेरे गांव के बाजार
अब विदेशी खिलौनों से चमकते हैं,
लस्सी की जगह कोल्ड ड्रिंक ने ले ली है।"

किश्वर नाहिद की यह कविता ग्रामीण भारत में सांस्कृतिक विस्थापन को दर्शाती है। एक परिचित ग्रामीण बाजार का रूपांतरणकृजहाँ अब विदेशी खिलौने और ठंडे पेय जैसे आयातित सामान प्रदर्शित होते हैंकृएक रूपक है, जो स्वदेशी संस्कृति के क्षरण की ओर संकेत करता है। यह कविता कवयित्री की उस चिंता को प्रकट करती है कि वैश्वीकरण केवल उपभोग की आदतों को ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान को भी परिवर्तित कर रहा है, जिससे पारंपरिक रीति-रिवाज और रुचियाँ हाशिए पर चली जाती हैं और विस्थापित हो जाती हैं।

- व्या**वसायिकता और मानवीय मूल्यों की हानि**

''बाजार को खबर नहीं
कि रोने की आवाज कैसी होती है
वह हर चीज को बिकाऊ समझता है''

राजेश जोशी की इन तीखी और व्यंग्यात्मक पंक्तियों में बाजार की भावनात्मक निष्क्रियता को उजागर किया गया है। यह कविता उस दुनिया पर शोक प्रकट करती है जहाँ रोने की आवाजकृजो मानवीय संवेदनशीलता का गहरा प्रकटन हैकृव्यावसायिक व्यवस्थाओं के लिए कोई मायने नहीं रखती। जोशी पूंजीवादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं, जिसमें सबसे अंतरंग मानवीय अनुभवों को भी अर्थहीन बना दिया जाता है और उनका भी विनिमय मूल्य तय कर दिया जाता है। "हर चीज को बिकाऊ समझता है" जैसी अभिव्यक्ति आर्थिक दबावों के कारण नैतिक और भावनात्मक सच्चाइयों के गहरे अवमूल्यन को दर्शाती है।

इन पंक्तियों के माध्यम से जोशी यह स्पष्ट करते हैं कि व्यावसायिकता केवल उपभोग की आदतों को नहीं बदलती, बल्कि वह रिश्तों, नैतिकता और मानवीय करुणा में भी घुसपैठ करती है, जिससे जीवन एक लेन-देन की प्रणाली में सिमटकर रह जाता है। उनकी कविता यह दर्शाती है कि काव्य नैतिक और सौंदर्यात्मक प्रतिरोध का माध्यम बनता हैकृएक ऐसा स्थान जहाँ उपभोक्तावाद की गिरफ्त से मानवीय गरिमा को पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

"हर रिश्ते की कुंडली
अब बाजार के रेट देखती है,
दोस्ती का दाम, प्यार का दाम
हर चीज बिकाऊ हो गई है।"

ष्गिरा हुआ सिक्काष् कविता में पवन करण तीव्र विडंबना के माध्यम से यह आलोचना करते हैं कि कैसे मानवीय रिश्ते भी अब बाजारू मूल्यों में बदल दिए गए हैं। दोस्ती और प्रेम का ष्मूल्यष् एक वस्तु के रूप में देखा जाने लगा है। यह कविता दर्शाती है कि कैसे व्यावसायिकता सामाजिक संबंधों में गहराई तक प्रवेश कर गई है, और आपसी विश्वास व आत्मीयता को माँग और आपूर्ति के गणित से काटती जा रही है।

- **महिलाएँ, पहचान और प्रतिरोध**

''औरत अब विज्ञापन है
साबुन की टिकिया के साथ आती है उसकी हँसी''

इन तीक्ष्ण पंक्तियों में अनामिका वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यमों के युग में स्त्री की वस्तुकरण की सच्चाई को उजागर करती हैं। अब स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्ति नहीं, बल्कि विज्ञापनों में प्रयुक्त एक दृश्य-सज्जा के रूप में देखा जाता है, जहाँ उसकी "हँसी" एक साबुन की टिकिया के साथ पैक की जाती है। "हँसी" और उपभोक्ता वस्तु के इस विडंबनात्मक संयोजन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रीत्व को किस प्रकार बाजार में बेचा जा रहा है कृ उसे उसकी गहराई, भावनाओं और निजता से वंचित कर एक विक्रय रणनीति में बदल दिया गया है।

अनामिका की कविता पितृसत्ता और नवउदारवादी उपभोक्तावाद कृ दोनों की संयुक्त आलोचना प्रस्तुत करती है, यह दर्शाते हुए कि किस प्रकार ये दोनों मिलकर लिंग भूमिकाओं को गढ़ते और नियंत्रित करते हैं। अपनी तीखी व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से वे यह दिखाती हैं कि कैसे स्त्रियों की पहचानें निर्मित, ब्रांडेड और बेची जाती हैं, जिससे उन्हें अपनी स्वायत्तता और प्रामाणिकता से वंचित कर दिया जाता है। इस प्रकार उनकी रचनाएँ प्रतिरोध की एक सशक्त आवाज बन जाती हैं, जो उन स्त्रियों के लिए कथा-क्षेत्र को पुनः प्राप्त करती हैं जिन्हें पारंपरिक भूमिकाओं और आधुनिक बाजारीकरण कृ दोनों ने मौन करा दिया है।

"मैं किसी की औरत नहीं हूँ

मैं अपनी औरत हूँ
मैं अपना खाना खाती हूँ
जब चाहूँ, तब खाती हूँ।"

हालाँकि मूल रूप से यह कविता अंग्रेजी अनुवाद में उद्धृत की गई है, सावित्री सिंह की यह हिंदी कविता स्त्री स्वायत्तता का दृढ़ घोषणा-पत्र प्रस्तुत करती है। "मैं किसी की स्त्री नहीं हूँय मैं अपनी स्त्री हूँ" जैसी दोहरावपूर्ण अस्वीकृति के माध्यम से यह कविता उन सांस्कृतिक मानदंडों का विरोध करती है जो स्त्री के शरीर और पहचान को परिभाषित करने और बाजारीकरण करने का प्रयास करते हैं। यह एक नारीवादी उद्घोष है, जो पितृसत्ता और उपभोक्तावादी व्यवस्थाकृदोनों की सहमति से हो रहे स्त्री-अधिकारों के अपहरण को चुनौती देती है।

- **शहरीकरण, अलगाव और नई भाषा**

''हमने चाहा था जीवन
और हमें दे दिया गया समय''

इन सादे और न्यूनतम पंक्तियों में मंगलेश डबराल आधुनिक शहरी जीवन से उपजे अस्तित्वगत शून्य को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हैं। "जीवन" और "समय" के बीच का विरोधाभास एक शक्तिशाली रूपक के रूप में उभरता हैकृजहाँ कवि एक संपूर्ण, अनुभूत, जीवित अनुभव यानी "जीवन" की आकांक्षा करता है, वहाँ उसे मिला केवल "समय"कृएक ऐसा समय जो नपा-तुला, नियोजित और पूंजीवादी तर्क से संचालित होता है।

यह पंक्ति शहरी आधुनिकता की उस अति-संरचित दुनिया पर एक मौन किन्तु गहरी टिप्पणी है, जहाँ भावनात्मक और आध्यात्मिक पूर्णता को दक्षता, समय-सीमाओं और लाभ के नाम पर बलिदान कर दिया जाता है। डबराल की काव्य-दृष्टि में शहरीकरण एक प्रकार की आत्मविस्मृति और अलगाव की प्रक्रिया बन जाता है, और उनकी संक्षिप्त भाषा उस खंडित मानसिकता को प्रतिबिंबित करती है जिसमें आज का व्यक्ति फँसा हुआ है।

समकालीन हिंदी कवियोंकृजैसे डबरालकृकी भाषा, शिल्प और स्वर में जो परिवर्तन दिखाई देता है, वह वैश्वीकरण द्वारा लाए गए भाषिक विघटन का भी प्रमाण हैकृएक ऐसा समय, जिसमें टूटी हुई परंपराएँ और थोपी हुई आधुनिकताएँ आपस में टकराती हैं।

"सड़कों की रोशनी
रोशन करती है चेहरों को,
पर अँधेरे दिलों को क्या पता
सुनसान है ये शहर।"

अरुण कमल की कविता शहरी एकाकीपन को उजागर करती है, जो बाहरी चमक-दमक की आड़ में छिपा रहता है। शहर की रोशनियाँ भले ही चेहरों को उजागर करती हों, लेकिन भीतर का भावनात्मक परिदृश्य अब भी अंधकारमय और सुनसान बना रहता है। यह विरोधाभास दर्शाता है कि वैश्वीकरण से प्रभावित शहरी परिवेश अक्सर एक प्रकार की आत्मिक निराशा और अलगाव को जन्म देते हैंकृजहाँ प्रगति की बाहरी चमक एक गहरे आंतरिक शून्य को छिपा लेती है।

इस कविता में कवि यह दिखाते हैं कि कैसे आधुनिक शहरों की भौतिक उपलब्धियाँ और तकनीकी विकास भी व्यक्ति की आंतरिक संवेदनाओं को स्पर्श नहीं कर पाते, बल्कि उसे और अधिक अकेला और खोखला बना देते हैं।

2. निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविता वैश्वीकरण और व्यावसायिकता के दूरगामी प्रभावों का विश्लेषण, आलोचना और कलात्मक प्रतिरोध करने वाला एक जीवंत और चिंतनशील माध्यम बन चुकी है। एक ऐसे समय में जब बाजारवादी विचारधाराएँ, तीव्र शहरीकरण और एकरूप सांस्कृतिक मान्यताएँ सामाजिक जीवन पर हावी हो रही हैं, हिंदी कवि परंपरा और परिवर्तन के चैराहे पर खड़े होकर जीवनानुभव की सजीवता को थामे रखते हैं और आधुनिकता की दरारों से टकराते हैं।

मंगलेश डबराल, राजेश जोशी और अनामिका जैसे कवि केवल आर्थिक और सांस्कृतिक वैश्वीकरण के प्रत्यक्ष प्रभावों की टिप्पणी नहीं करते, बल्कि उसके भावनात्मक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को भी गहराई से टटोलते हैं। डबराल सांस्कृतिक आत्मीयता के क्षरण का शोक करते हैं, जोशी मानवीय संवेदनाओं के वस्तुकरण की आलोचना करते हैं, और अनामिका उपभोक्तावादी पितृसत्ता के जाल से स्त्री अस्मिता को पुनः प्राप्त करती हैं। इनके लिए कविता केवल सृजनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि वैचारिक प्रतिरोध का माध्यम है, जहाँ रूपक घोषणाओं से अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, यह काव्य-संभार एक सांस्कृतिक स्मृति के भंडार के रूप में कार्य करता हैकृऐसी स्वदेशी आवाजों, मुहावरों और मूल्यों को संरक्षित करता है जो एक तीव्रता से बदलते वैश्विक समाज में लुप्त हो सकते थे। इस कार्य के माध्यम से समकालीन हिंदी कविता अपना नैतिक दायित्व निभाती हैकृयह केवल घटनाओं का मौन दस्तावेज नहीं, बल्कि सक्रिय विरोध हैय केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान से सचेत मुठभेड़ है। यह

पाठकों को याद दिलाती है कि लाभ-केंद्रित आख्यानों के युग में भी मानवीय आत्मा, भावना और गरिमा को कविता की शरण में आश्रय और शक्ति प्राप्त होती है।